दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2497 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 1

अध्यात्म-पद

(राग मारू)

जो जो देख्यो वीतरागने सो सो होसी वीरा रे।
बिन देख्यो होसी नहिं क्योंही, काहे होत अधीरा रे॥ जो०
समयो एक बढ़ै नहिं घटसी, जो सुख-दुख की पीरा रे।
तू क्यों सोच करै मन कूड़ो, होय वज्र ज्यों हीरा रे॥ जो०
लगै न तीर कमान बान कहुं, मार सकै नहिं मीरा रे।
तू सम्हारी पौरुष बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे॥ जो०
निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभु को, जो टारै भवभीरा रे।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारै भव नीरा रे॥ जो०

चारित्र
ज्ञान
दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मई : 1971] वार्षिक मूल्य 3) रुपये (313) एक अंक 25 पैसा [वैशाख : 2497

हृदय के उद्‌गार प्रगट करते हुए कहते हैं कि—

''हम तो मुनियों के चरण-सेवक हैं''

पंच परमेष्ठी भगवंतों के प्रति भक्तिपूर्वक श्री कानजीस्वामी कहते हैं कि—अहो! मुनिवर तो परमानंद में झूलते-झूलते मोक्ष की साधना कर रहे हैं। आत्मा के अनुभवपूर्वक दिगंबर चारित्रदशा द्वारा मोक्ष की साधना होती है। दिगंबर साधु अर्थात् मोक्ष का मार्ग... वे तो छोटे सिद्ध हैं... अंतर के चिदानंदस्वरूप में झूलते-झूलते बारंबार शुद्धोपयोग द्वारा निर्विकल्प आनंद का अनुभव करते हैं। पंच परमेष्ठी की पंक्ति में जिनका स्थान है—वैसे मुनि की महिमा तो अद्‌भुत है! ऐसे मुनि के दर्शन होना भी महान आनंद की बात है। ऐसे मुनिवरों के तो हम दासानुदास हैं... उनके चरणों में हम नमन करते हैं... धन्य है वह मुनिदशा! हम भी उसकी भावना भाते हैं।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

मई : 1971 ☆ वैशाख : वीर नि० सं० 2497, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 1

सम्यग्दृष्टि-धर्मात्मा की दशा

भाई! यह आत्मा के हित की बात है, संसार में परिभ्रमण करते-करते जीव ने पूर्व अनंतकाल में एक क्षण भी आत्मा की प्रतीति नहीं की, एक क्षण भी यदि सच्ची प्रतीति करे तो उसके भव का नाश हुये बिना न रहे। गृहस्थदशा होने पर भी जिसने ऐसी प्रतीति करके स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, वह जीव मोक्ष-महल के आँगन में आ चुका। भले ही उसे आहार-विहारादि हो, किंतु आत्मा का लक्ष एक क्षण भी दृष्टि में से दूर नहीं होता, अतीन्द्रियज्ञानमय आत्मा का जो निर्णय किया है, वह किसी भी संयोग में छूटनेवाला नहीं है—उसे तो निरंतर धर्म होता ही है।

अंतर्मुख होकर, आत्मा के स्वसंवेदन से जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उस सम्यग्दृष्टि को भगवान का दर्शन हो गया—आत्मा का साक्षात्कार हो गया, अतीन्द्रिय आनंद का वेदन हो गया, स्वानुभव हो गया, निर्विकल्प समाधि हो गई, अनंत भव का नाश हो गया, सिद्ध परमात्मा का संदेश आ गया, उसे आत्मा की मुक्ति की भनक आ गई, वह निरंतर आंशिक स्वसंवेदन के आनंदसहित है, वह धर्मात्मा परमात्मपद के सन्मुख ही है। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा की ऐसी दशा होती है—भले ही वह अव्रती हो..... तिर्यंच हो, या नरक क्षेत्र में हो।

'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत हैं'

'समयसार-नाटक' द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के फाटक खुल जाते हैं

[समयसार-नाटक के प्रवचनों से - लेखांक-2]

* अरिहंत सिद्ध और साधु की स्तुति के बाद सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा चलती है।

* अहो! जगत में सम्यक्त्वी जीव ही सदा सुखी हैं। भगवान के दास और जगत से उदास—ऐसे सम्यक्त्वी जीव स्वार्थ में सच्चे हैं अर्थात् आत्मपदार्थ का सच्चा ज्ञान करके उसे वह साध रहे हैं; और परमार्थरूप जो मोक्ष, उसमें उनका चित्त बराबर लगा है; आत्मा का सच्चा ज्ञान है, और मोक्ष का सच्चा प्रेम है। मोक्ष की साधना में ही उनका चित्त लगा है।

* सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा गृहस्थदशा में हो तथा दूसरी क्रियायें करता दिखाई दे किंतु वह तो 'जैसे धाय माता बालक का पालन करे वैसे' अंतर से न्यारा है, उसकी रुचि का प्रेम संसार में बिलकुल नहीं है, एक मोक्षरूप परमार्थ को ही साधने की लगन है। अंतर में उसकी दृष्टि गृहस्थ्दशा से पार अपने आत्मा को देखती है। असंयत दशा में होने पर भी ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, मोक्ष का साधक होने से प्रशंसनीय है। चारों गतियों के जीवों को ऐसा सम्यग्दर्शन हो सकता है।

* अब सम्यग्दृष्टि के अंतर में भेदज्ञान कैसा प्रगट हुआ है? तो कहते हैं कि गणधर जैसा। अहो! जो सम्यग्दृष्टि है, उसके हृदय में, उसके आत्मा में गणधर भगवान जैसा विवेक प्रगट हुआ है। विवेक अर्थात् स्व-पर का भेदज्ञान, वह तो छोटे सम्यग्दृष्टि मेंढ़क को और बड़े गणधरदेव दोनों को समान है; दोनों अपने आत्मा को विकल्प से भिन्न शुद्धस्वरूप अनुभव करते हैं। स्व को स्व और पर को पर—इसप्रकार स्व-पर की

भिन्नता जानने में सभी सम्यग्दृष्टि समान हैं। किसी सम्यग्दृष्टि के अंतर में अपने शुद्धात्मा के अतिरिक्त परभाव का एक अंश भी अपना भासित नहीं होता।

* धर्मी के अनुभव में आनंद का झरना फूटा है; सम्यग्दर्शन हो और भेदज्ञान हो, वहाँ आत्मा के आनंद का अनुभव होता है। आत्मा के स्वभाव का जो सच्चा सुख, उसे ही वह सुख मानता है; आत्मा के स्वभाव के सिवाय अन्यत्र किसी विषय में वह सुख नहीं मानता। अहा, अतीन्द्रिय स्वाधीन सुख का स्वाद जिसने चखा है, वह इन्द्रिय-विषयों में स्वप्न में भी सुख नहीं मानता। वह अपने आत्मा की अडोल महिमा को जानता है। अहा, सम्यग्दर्शन की अपार महिमा है!

* सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा अपने सम्यग्दर्शनादि गुणों को प्रगट करके, उस सम्यग्दर्शनादि स्वभाव को अपने में ही धारण करता है। रागादि परभावों को वह अपने में धारण नहीं करता। स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुए सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावों को ही वह आत्मा में धारण करता है। श्रीमद् राजचंद्रजी भी कहते हैं कि—

स्वद्रव्य के धारक त्वरा से बनो,
परद्रव्य का धारकपना त्वरा से त्यागो।

* इसप्रकार धर्मी निश्चय को ही धारण करता है और रागादि व्यवहार को धारण नहीं करता। इसका नाम धर्म का विवेक है। विवेक के बिना धर्म नहीं होता।

* निर्विकल्प भेदज्ञान में आत्मा और राग भिन्न पड़ जाते हैं। अंतर में शुद्धात्मा को अनुभव में लिया, वहाँ जीव और अजीव का अत्यंत पृथक्करण हो गया। एक ओर शुद्धजीव स्वपने अनुभव में आया और इसके अतिरिक्त अन्य सब अजीव में रह गया। ऐसी अंतर की क्रिया से धर्मीजीव को मोक्ष का फाटक खुल जाता है, उसी के द्वारा वह मोक्ष का साधन करता है।

* वह धर्मी जीव आत्मशक्तियों को साधता है और ज्ञान के उदय की आराधना करता है; ज्ञान का उदय अर्थात् पूर्ण केवलज्ञान का प्रकाश, उसकी धर्मी जीव आराधना करता है; आत्मशक्ति की वृद्धि के उद्यमसहित ज्ञानसूर्य को प्रकाशित करता है। भेदज्ञान तो प्रगट हुआ है और केवलज्ञान की आराधना करता है।

* ऐसे गुणों सहित सम्यक्त्वी धर्मात्मा भवसागर को पार करता है। ऐसे सम्यग्दर्शन के बिना अन्य किसी उपाय से भवसागर को तरना चाहे तो नहीं तर सकता। जिसे भवसागर से पार होना हो और मोक्ष प्राप्त करना हो, वह इस सम्यग्दर्शन को धारण करे। सम्यग्दर्शन को धारण करनेवाला जीव अल्पकाल में भवसागर को पार करके मोक्ष प्राप्त करता है।

* सम्यग्दृष्टि की महिमा बताई; अब उससे विरुद्ध मिथ्यात्वी जीव कैसा होता है, वह भी बताते हैं—धर्म कया, आत्मा का स्वभाव क्या, जीव-अजीव का भिन्न-भिन्न स्वरूप कैसा है ? उसे तो वह जानता नहीं, ऐसे मिथ्यात्वी जीव का सारा कथन तत्त्व से विरुद्ध मिथ्यात्वमय होता है; भगवान कथित अनेकांतमय सच्चा वस्तुस्वरूप तो वह जानता नहीं है; इसलिये एकांत का पक्ष करके स्थान-स्थान पर वह वाद-विवाद और लड़ाई खड़ी करता है। जगत में ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं, उनका ज्ञान करवाने के लिए उनका वर्णन किया है। ऐसा मिथ्यात्वभाव सर्वथा छोड़ने योग्य है।

सम्यग्दृष्टि कैसा होता है, यह पहिचान करवाई तथा मिथ्यात्वी जीव कैसा होता है, यह भी पहिचान करवाई। सम्यग्दृष्टि तो आत्मशक्ति को विकसित करके भवसागर से पार होता है और मिथ्यादृष्टि तो आत्मघाती महा पातकी है। ऐसा जानकर मिथ्याभाव छोड़कर सम्यक्त्व की आराधना करता है।

* अब कहते हैं कि अहो! उन सिद्धभगवंतों को और उसके उपायरूप रत्नत्रय को वंदन हो—कि जिसके प्रसाद से मैं इस समयसार नाटक ग्रंथ की रचना करता हूँ।

वंदूं शिव अवगाहना, अरु वंदूं शिवपंथ;
जसु प्रसाद भाषा कहूँ नाटक नाम गरन्थ।

अत्यन्त विनयपूर्वक पंडित बनारसीदासजी कहते हैं कि अहो, जिनके प्रसाद से हिंदी भाषा में इस नाटक समयसार जैसे महान अध्यात्मरस झरते ग्रंथ की रचना होती है, उन असंख्य प्रदेशरूप आत्म-अवगाहनावाले सिद्ध भगवंतों को मैं वंदन करता हूँ।

* संतों की ओर का विषय और अपनी लघुता पूर्वक कहते हैं कि—अहो! कहाँ तो यह समयसार जैसा महान कार्य और कहाँ मेरी अल्पबुद्धि! श्री कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचंद्राचार्य जैसे महा समर्थ मुनि भगवंतों ने जिस समयसार की रचना का महान

कार्य किया, उसी अनुसार मैं भी उनके भावों को इस कविता में गूँथने का अपनी अल्पबुद्धि से प्रयत्न करता हूँ। कहाँ वे अगाध ज्ञान के सागर मुनि भगवंत! और कहाँ मैं! तो भी भक्तिवश मैं इस समयसार नाटक ग्रंथ की हिंदी में रचना करने के लिए उद्यमी हुआ हूँ।

हीरा की कनी से वींधे हुए रत्न-मोती जो तैयार हों तो फिर उन्हें रेशम की डोरी में पिरोकर माला बनाना सरल है; उसी भाँति समयसार तो रत्न है, मोती है; और अमृतचंद्रसूरि ने टीका से उसका अर्थ छेद-भेदकर, स्पष्ट खोलकर समझने के लिये अत्यंत सरल कर दिया है, इसलिये मेरी अल्पबुद्धि से समझने में आया और उसे शास्त्ररूप से गूँथना सरल हो गया। इसप्रकार पूर्वाचार्यों ने जिसप्रकार से कहा, उसीप्रकार कहने के लिये मेरी मति सावधान हुई है। जिसप्रकार प्रौढ़ पुरुष जिस भाषा को बोलते हैं, उसको सीखकर बालक भी वैसी ही भाषा बोलता है; उसीप्रकार महापुरुषों ने शास्त्र में जो भाव कहे, तदनुसार समझकर मैं इस शास्त्र में कहता हूँ!

देखो तो सही, समयसार की रचना तो रेशन की डोरी में सच्चे रत्न पिरोने जैसी है। इसमें अध्यात्म-रस का झरना बहता है और भाव से इसका श्रवण करते ही हृदय का फाटक खुल जाता है।

तब सम्यग्दर्शन हुआ

परम आत्मतत्त्व की अनुभूति में 'मैं द्रव्य हूँ या मैं पर्याय हूँ' ऐसा भेद नहीं रहता, वहाँ द्वैत नहीं, विकल्प नहीं, पक्षपात नहीं। पहले अनुभव के प्रयत्न-काल में जो जो विकल्प थे; व्यवहार से जो साधक कहलाते थे, वे ही अनुभव के समय बाधक होते हैं, अर्थात् साक्षात् अनुभवदशा के समय कोई विकल्प नहीं होते, विकल्पों का लोप होकर एक परम तत्त्व ही प्रकाशमान रहात है; नय-निक्षेप-प्रमाण के सर्व विकल्प निर्वंश हो जाते हैं। अहा! ऐसी अनुभूति हुई, तब सम्यग्दर्शन हुआ। आत्मा के ऐसे अनुभव बिना कोई कहे कि हमें सम्यग्दर्शन हो गया है—तो वह मात्र भ्रम ही है। सम्यग्दर्शन परिणति राग-द्वेष-मोह के विकल्पों से सर्वथा भिन्न है, वह मोह का पर्दा फाड़कर अंदर चैतन्य में प्रवेश कर गई है।

अनंत जीवों ने आत्मा को जान-जानकर मोक्ष प्राप्त किया है, तू भी समझने के लिए निरंतर धुन लगा

[गढडा : माह सुदी 8 तथा 10 (2497) समयसार, गाथा-38]

मैं एक शुद्ध सदा अरूपी ज्ञान दर्शनमय खरे,
कुछ अन्य वह मेरा जरा परमाणुमात्र नहीं अरे।

धर्मात्मा को अपने आत्मा का कैसा अनुभव हुआ, उसका वर्णन इस गाथा में है।

धर्मी जानता है कि मेरा आत्मा ही सर्वज्ञस्वभावी परमेश्वर है। राग-द्वेष से विरक्त ऐसा जो ज्ञानस्वभाव है, उसका भान करके उसमें एकाग्रता से आत्मा स्वयं परमेश्वर होता है। इसके अलावा दूसरा कोई ईश्वर इस आत्मा को कुछ दे दे—ऐसा नहीं है।

अरे, अपने आनंद और ज्ञान का निधान भरा है, परंतु जीव स्वयं अपने को भूल गया है। सुख की प्राप्ति तो अंतर के मंथन से होती है, शरीर के मंथन से सुख की प्राप्ति नहीं होती। परंतु ऐसे आत्मा का भान भूलकर अज्ञानी अनादि से उन्मत्त हो रहा है, मोह के कारण स्व-पर की भिन्नता का भान भूल रहा है। यहाँ तो जिसने आत्मा का भान किया है, ऐसे धर्मी की बात है। वह जानता है कि अहा! मेरी प्रभुता मुझमें है, मेरा आत्मा ही अपनी प्रभुता सहित है। चमड़े के शरीर से चैतन्यप्रभु को पहचानना तो मूर्खता है। मोह से उन्मत्त जीव ने अपनी प्रभुता को भूलकर शुभ-अशुभ सभी भाव किये हैं, परंतु अतीन्द्रिय आनंद की खान तो अपने में भरी है, उसका अनुभव कभी नहीं किया। भाई! अज्ञानरूपी अंधकार में ढूँढ़ने से तेरा आत्मा नहीं मिलेगा; ज्ञान के प्रकाश में खोज, तभी आत्मा मिलेगा।

अवस्था में अज्ञान है, वह अज्ञानदशा जीव की अपनी है और जीव स्वयं ही सच्ची समझ से उस अज्ञानदशा को दूर करके, अपनी प्रभुता को अनुभव करता है—ऐसी दो प्रकार की दशायें जीव में होती हैं। उसमें अज्ञानदशा छोड़कर ज्ञानी हुआ जीव अपने आत्मा का कैसा अनुभव करता है, उसकी यह बात है। भगवान आत्मा में ऐसा चमत्कारिक प्रभाव है कि उस पर दृष्टि डालते ही परम आनंद होता है। जगत के अन्य किसी पदार्थ में ऐसा प्रभाव नहीं। ऐसे

आत्मा का अनुभव करते ही मोक्षमार्ग खुल जाता है।

श्रीफल के सफेद-मीठे गोले की तरह आत्मा आनंद के मीठे रस से भरा हुआ स्वच्छ चैतन्य गोला है। जैसे जटे, नरेली और छाल इन तीनों से भिन्न गरी का गोला है, वैसे ही देहरूपी जटे, आठ कर्मरूपी नरेली और राग-द्वेषरूपी छाल इन सबसे जुदा आनंदमय चैतन्य गोला आत्मा है; उसका अनुभव कैसे हो? कि ज्ञान को उसमें ले जाये तो उसका अनुभव हो। विरक्त ज्ञानी गुरु ऐसा आत्मा समझाते हैं—वह 'निरंतर' ऐसा स्वरूप समझाते हैं अर्थात् समझनेवाले शिष्य को निरंतर समझने की जिज्ञासा है। श्रीगुरु के पास से शिष्य ने जहाँ सुना कि 'तेरा आत्मा ही ज्ञानस्वरूप परमेश्वर है'—वहाँ उसकी भनक अंदर आने लगी और उसके अनुभव की निरंतर धुन लग गई; इसलिये श्रीगुरु भी उसको निरंतर यही समझा रहे हैं, ऐसा कहा; वास्तव में तो शिष्य निरंतर अंदर का प्रयत्न करता है। ऐसे स्व-सन्मुख प्रयत्न से अपना परमेश्वर अपने में प्राप्त होता है और मोक्ष की भनकार गूँजती है!

जीव से ऐसा हो सकता है क्या?

हाँ, ऐसा किया, तभी तो जीवों ने मुक्ति प्राप्त की। अनंत जीवों ने इसप्रकार आत्मा को जान-जानकर मुक्ति प्राप्त की है; और जो कोई जीव मुक्ति प्राप्त करेंगे, वह भी ऐसे आत्मा को समझकर ही मुक्ति प्राप्त करेंगे। दूसरा कोई मोक्ष का पंथ नहीं है।

'एक होय त्रैकाल में परमात्मा का पंथ'

अरे, तू स्वयं परमेश्वर! आत्मा में ज्ञान-आनंद का भंडार है। जैसे आतिशबाजी में फूल झड़ने की शक्ति है; उसमें चिंगारी लगाते ही फूल झड़ने लगते हैं, वैसे ही इस आत्मा में ज्ञान और आनंद के अनंत फूल झड़े, ऐसी ताकत है, उसमें भेदज्ञानरूपी चिंगारी लगाते ही अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंद से सुशोभित रत्नत्रय के फूल झड़ते हैं। ऐसा आत्मा श्रीगुरु ने बताया और निरंतर उसकी धुन से शिष्य ने उसका अनुभव किया।

सांसारिक प्रसंग में भी लोग प्रतिकूलता आने पर किसी न किसी प्रकार समाधान कर लेते हैं। तो अपने ज्ञानस्वभाव के लक्ष से आत्मा में ऐसी शक्ति है कि अनंत प्रतिकूलता के मध्य भी आत्मा समाधान कर सकता है। क्योंकि सुख तो अपने स्वभाव में है, वह कहीं बाहर से नहीं लाना है; अर्थात् स्वभाव के लक्ष से चाहे जिस परिस्थिति में जीव सुख का अनुभव कर सकता है।

ऐसा आत्मा अपने शुद्धभाव से ही जाना जाता है। इन्द्रियों से, शास्त्र के शब्दज्ञान से वह ज्ञात नहीं होता। जन्म-मरण का अंत करना हो और मोक्ष का सुख प्राप्त करना हो तो आत्मा का स्वरूप समझना चाहिए, इसके सिवाय छुटकारा नहीं है। आत्मा स्वयं सहजानंदस्वरूप है; उसे जानते ही आनंद प्राप्त होता है। ऐसे अपने आत्मा को जाने-श्रद्धा करे और अनुभव करे, वहाँ धर्मी को प्रतीति होती है कि मैंने ऐसा अनुभव किया है, महान ज्ञानप्रकाश मुझे प्रगट हुआ है, उसमें अब कभी मोह होनेवाला नहीं। अपने चैतन्यस्वरूप के अतिरिक्त अन्य कोई भी परद्रव्य मुझे निजस्वरूप किंचित् भी दिखाई नहीं पड़ता। ऐसा भेदज्ञान धर्म है, वही मोक्षमार्ग है।

लोग सत्य नहीं समझते, इस कारण जीव को बहुत खेद रहता है—परंतु वह वेदन कम कर देने जैसा है। क्योंकि आत्मा को लक्षगत करनेवाले मुमुक्षु सदैव थोड़े-विरले ही होते हैं। हजारों-लाखों जीवों में ऐसी मुमुक्षुता देखने की अपेक्षा रखना ही व्यर्थ है। अत: उस संबंधी खेद नहीं करना चाहिये। परंतु कोई एकाध जीव सच्चा मुमुक्षु दिखाई पड़े तो उस संबंध में प्रमोद-प्रसन्नता और अनुकरण कर्तव्य है—जिससे स्वयं में भी मुमुक्षुता का उल्लास बढ़े। शेष संसार के जीवों की तरफ तो देखना ही क्या? क्योंकि—

बहु लोक ज्ञानगुणे रहित आ पद नहीं पामी शके;
रे! ग्रहण कर तुं नियत आ, जो कर्म-मोक्षेच्दा तने।

—कुन्दकुन्द भगवान का यह उपदेश है। उनके समय में ही यह परिस्थिति थी तो अब इस जमाने की क्या बात?

विशेष तो स्वयं अपना हित शीघ्र ही, वही करना योग्य है। स्वानुभूति की गहराई में कैसे उतरा जाये—वही प्रयत्न करना चाहिए।

(—एक पत्र में से)

वीतराग मार्ग का मधुर प्रवाह

[श्री प्रवचनसार गाथा 172 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

* अपना या पर का आत्मा इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। अपने आत्मा को स्वसंवेदन से जिसने प्रत्यक्ष किया है, वही दूसरे आत्मा का सच्चा अनुमान कर सकता है। जिसने अपने आत्मा को अनुभव में नहीं लिया है, वह दूसरे धर्मात्माओं को भी नहीं पहचान सकता। प्रत्यक्षपूर्वक का अनुमान सच्चा होता है। प्रत्यक्षरहित अकेला अनुमान सच्चा नहीं होता।

* स्वसन्मुख होकर आत्मा को प्रत्यक्ष किये बिना जीव ने बाहर का ज्ञान अनंत बार किया और उसमें सन्तोष मान लिया। अरे, आत्मा की प्रत्यक्षतारहित ज्ञान वास्तव में ज्ञान हीं नहीं है, इसलिये 'जहाँ तक मेरा आत्मा मुझे प्रत्यक्ष न हो, वहाँ तक मैंने वास्तव में कुछ भी जाना ही नहीं है'—इसप्रकार जब तक जीव को अपनी अज्ञानता भासित न हो, और दूसरे परलक्षी ज्ञान में अपनी महानता मानकर संतुष्ट हो जावे—तब तक आत्मा का सच्चा मार्ग जीव के हाथ में नहीं आता। अंतर में परम स्वभाव से परिपूर्ण भगवान आत्मा के सन्मुख होने पर ही परम तत्त्व की प्राप्ति होती है और मोक्षमार्ग हाथ में आता है।

संत कहते हैं : तू भगवान है!

* भाई, अपने आत्मा के समक्ष देखे बिना, अर्थात् आत्मा का स्वसंवेदन प्रत्यक्ष किये बिना, अज्ञानदशा का सर्वोच्च शुभभाव भी तूने किया, ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त किया, परंतु इससे आत्मा के कल्याण का मार्ग किंचित्मात्र तेरे हाथ में नहीं आया। अतः ज्ञान को पर-विषयों से भिन्न करके स्व-विषय में जोड़। इन्द्रियज्ञान के व्यापार में ऐसी शक्ति नहीं है कि आत्मा को स्व-विषय बनाकर जाने। तू परमात्मा, तुझे स्वयं अपना ज्ञान करने के लिए इन्द्रियों या राग के पास जाकर भीख माँगनी पड़े, ऐसा भिखारी तू नहीं है। अहो, संत कहते हैं कि तू भिखारी नहीं किंतु भगवान है।

* अज्ञानियों के अनुमान में आ जाये, ऐसा यह आत्मा नहीं है। अकेले परज्ञेय को

अवलंबन करनेवाला ज्ञान, वह अज्ञान है, वह ज्ञान नहीं है। ज्ञान का भंडार आत्मा, वह स्वयं अपने ज्ञानस्वभाव का अवलंबन लेकर जिस ज्ञानरूप परिणमन करे, वही ज्ञान मोक्ष का साधनेवाला है।

* यह शरीर घट कहलाता है, घड़े के समान वह क्षणिक नाशवान है। वह घट और घट को जाननेवाला—यह दोनों एक नहीं हैं किंतु भिन्न हैं। शरीर की अंगभूत इन्द्रियाँ, वह कहीं आत्मा के ज्ञान की उत्पत्ति का साधन नहीं हैं। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभावी आत्मा हैं, उसे साधन बनाकर जो ज्ञान होता है, वही आत्मा को जाननेवाला होता है। पुण्य-पाप भी इसका स्वरूप नहीं है। अतीन्द्रिय ज्ञान ऐसा नहीं है कि पुण्य-पाप की रचना करे। राग की रचना करना आत्मा का कार्य नहीं है; आत्मा का वास्तविक कार्य (अर्थात् परमार्थ लक्षण) तो अतीन्द्रिय ज्ञानचेतना है; उस चेतनास्वरूप से अनुभव में लेते ही सच्चे आत्मा का स्वरूप अनुभव में आता है। ऐसे आत्मा को अनुभव में ले, तभी जीव को धर्म होता है।

* आत्मा स्वयं उपयोगस्वरूप है; उसे पर का आलंबन नहीं है; बाहर से वह उपयोग को लाता नहीं है। अंतर की एकाग्रता से जो उपयोग कार्य करे, वही आत्मा का स्व-लक्षण है। ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान का धनी भगवान अशरीरी आत्मा, वह स्वयं को भूलकर शरीर धारण कर-करके भव में भटके, यह तो लज्जाजनक है, यह कलंक आत्मा को शोभा नहीं देता। बापू! तू अशरीरी चैतन्य भगवान, तेरा चैतन्य उपयोग शरीर में से, इन्द्रियों में से या राग में से नहीं आता; ऐसे आत्मा का संस्कार अंतर में जिसने डाल लिया है, उसके परभव में भी वह संस्कार साथ रहेगा, इसलिये बार-बार अभ्यास करके ऐसे आत्मस्वभाव के संस्कार अंदर में दृढ़ करने योग्य हैं। बाहर की पढ़ाई से यह ज्ञान नहीं आता, यह तो अंतर के स्वभाव से ही विकसित होता है। अंतर में स्वभाव के घोलन का संस्कार बार-बार अत्यंत दृढ़ करने पर वह स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। वही धर्म की सच्ची कमाई है, और ऐसी धर्म की कमाई का यह अवसर है।

* आत्मा का चिह्न जो उपयोग, उसे कोई ले नहीं सकता; आत्मा का सहज स्वभाव जैसे

नित्य है, वैसे ही उसमें अंतर्मुख होकर अभेद हुआ उपयोग भी नित्य आत्मा के साथ अभेद रहेगा, उसका किसी के द्वारा नाश नहीं हो सकेगा।

* अस्तित्व, नित्यत्व और समाधिसुख से भरपूर जो उपयोगस्वरूप आत्मा, उसमें जिसकी प्रीति हुई, उसको भिन्नरूप अनित्य ऐसे शरीरादि संयोगों में आत्मबुद्धि नहीं रहती, और उनके लक्ष से होनेवाले रागादि परभावों में भी उसकी प्रीति उड़ जाती है। ज्ञानोपयोग अंतर्मुख होकर अपने अस्तित्व, नित्यत्व और समाधिसुख के वेदन में लीन हुआ, वह उपयोग किसी के द्वारा नष्ट नहीं होता। वह उपयोग किसी दूसरे के द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ था, जो उसके द्वारा नाश किया जा सके।

* जिसने इन्द्रियों में या राग में अपने उपयोग का अस्तित्व माना, अथवा उन इन्द्रियों या राग से उपयोग की उत्पत्ति होना माना, वह अपने उपयोग को बाहर से आना मानता है; इन्द्रियों और राग का नाश हो जाने पर उसका उपयोग भी नष्ट हो जायेगा—परंतु ऐसा पराधीन उपयोग आत्मा का स्वरूप नहीं है, आत्मा का उपयोग स्वाधीन है; स्वाधीन-अर्थात् आत्मा के आश्रय से प्रगट हुआ उपयोग आत्मा से कभी छूटता नहीं, कोई उसका हरण नहीं कर सकता। ऐसा उपयोगस्वरूप आत्मा का परमार्थ स्वरूप है।

* अहो! सर्वज्ञ भगवान ने उपयोगस्वरूप आत्मा देखा है। नित्य उपयोगलक्षणरूप अपना आत्मा जिसने देखा, उसने सर्वज्ञ को पहचाना, उसने सर्वज्ञ की आज्ञा जानी। जो जीव उपयोगस्वरूप आत्मा को अन्यरूप से मानता है, वह भगवान की आज्ञा से विरुद्ध है। वह जीव मिथ्या मान्यता से क्षण-क्षण में भावमरण करके आत्मा के आनंद का हनन करता है, वह हिंसा है। उस हिंसा और भावमरण से आत्मा कैसे छूटे? कि अपने आत्मा के नित्य उपयोगस्वरूप को जानकर, उसमें उपयोग जोड़े, तो वह उपयोग किसी के द्वारा नष्ट नहीं हो सकता; आनंदमय उपयोग से जीवित आत्मा का जीवितव्य किसी के द्वारा नष्ट नहीं हो सकता; भावमरण नहीं हो सकता। सुख का पुंज आत्मा है, वह ऐसे उपयोग से अनुभव में आता है, उसमें कोई विघ्न नहीं। ऐसा निर्विघ्न उपयोग, वह महान आनंदरूप मंगल है।

* स्व-सन्मुख हुआ वह अतीन्द्रिय उपयोग, कर्म से और राग से छूटकर अपने

आनंदस्वभाव में ऐसा लीन हुआ है कि उसे कोई आत्मा से छुड़ा नहीं सकता। स्वभाव में लीन हुआ उपयोग ध्रुव के साथ अभेद हो गया—चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि के ऐसा उपयोग प्रगट होता है, ऐसा उपयोग, वह जीव का धर्म है।

* उपयोग में विकार नहीं, जैसे सूर्य के प्रकाश में मैल नहीं; वैसे ही आत्मा के उपयोग-प्रकाश में रागादिरूप मलिनता नहीं। उपयोग तो शुद्धस्वरूप है। राग को उपयोग जानता भले हो परंतु राग और उपयोग की एकता नहीं है किंतु भिन्नता है। ज्ञान है, वह राग नहीं; राग है, वह ज्ञान नहीं। ज्ञान है, वह आत्मा है। उपयोगस्वरूप से अपने आत्मा का अनुभव करे, उसमें रागादि का अत्यंत अभाव है, ऐसे आत्मा का अनुभव वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। राग तो राग में है, ज्ञान में राग नहीं है। धर्मी अपने ज्ञानरूप से ही अपने को अनुभव करता है; जहाँ ज्ञान, वहाँ मैं हूँ, राग में मैं नहीं हूँ और जहाँ मैं हूँ, वहाँ राग नहीं है—ऐसा स्पष्ट भेदज्ञान करे, तब जीव को धर्म हो, अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट हो; इसके अतिरिक्त धर्म नहीं होता।

मोक्ष के लिए तुरंत करने जैसा

* चैतन्य भगवान की यह बात! किन शब्दों में इसे कहें? इसका जो अंतर में भाव है, उस भाव को लक्ष में ले तो चैतन्य भगवान की कीमत समझ में आए.... बाकी शब्दों में चाहे जितना कहा जाये तो भी उसका पार नहीं पड़ सकता, और शब्दों के लक्ष से वह समझ में नहीं आ सकता; शब्दातीत वस्तु, इन्द्रियातीत-चैतन्य वस्तु, उसमें आंतरिक उपयोग को ले जाये तो उसके परमानंद का अनुभव हो। बाकी शब्द तो श्रवणेन्द्रिय का विषय, और आत्मा तो अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय,—इन्द्रियज्ञान से वह पकड़ में नहीं आ सकता; स्वयं इन्द्रियों से पार-राग से पार होकर अपने आत्मा में उपयोग लगा... वह उपयोग रागरहित शुद्ध हुआ, इन्द्रियों के अवलंबन रहित अतीन्द्रिय हुआ, प्रत्यक्ष हुआ, आनंदरूप हुआ। ऐसा शुद्धोपयोग स्वभावी आत्मा ही सच्चा आत्मा है। ऐसे आत्मा को निर्णय में लेकर अनुभव करना ही मोक्ष के लिए कर्तव्य है। वह तुरंत ही करने जैसा है, उसमें विलंब करना उचित नहीं। धर्मी ऐसी क्रिया से मोक्ष को साधता है। इसके अतिरिक्त राग की क्रिया या शरीर की क्रिया वास्तव में आत्मा की क्रिया नहीं है, वह

आत्मा की धर्मक्रिया से भिन्न है। जन्म-मरण के अंत करने की क्रिया तो अंतर के शुद्धोपयोग में समा जाती है। राग से पार अंतर के चिदानंदस्वभाव को जानकर धर्मी जीव शुद्धोपयोग से अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद लेता है, उसमें रागादि का स्वाद नहीं लेता, ऐसे स्वाद का अनुभव हो, तभी आत्मा को जानना कहलाता है, तभी धर्म और मोक्षमार्ग होता है। इसलिये सर्वप्रथम ऐसा आत्मज्ञान शीघ्र कर लेना उचित है।

चिदानंद भगवान की स्तुतिरूप मंगल और स्वानुभूतिरूप नमस्कार

माघसुदी पंचमी के दिन समयसार-नाटक की उत्थानिका पूर्ण होने के बाद प्रथम जीव अधिकार का प्रारंभ श्री चंद्रकांत हरिलाल दोशी के नए मकान के वास्तु-प्रसंग पर हुआ था। उस प्रवचन में से भाववाही मंगल प्रसाद यहाँ दिया जा रहा है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने जिस समयसार-परमागम की रचना की है, उसकी अलौकिक टीका अमृतचंद्राचार्यदेव ने की है, उसमें 278 अध्यात्म-रस झरते हुए कलश हैं—उसमें मांगलिक का प्रथम श्लोक—

नमः समयसाराय स्वानुभूत्याचकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्व भावांतरच्छिदे॥ 1॥

इस कलश पर से उसके साररूप पंडित बनारसीदासजी ने हिन्दी में नाटक समयसार की रचना की है; उसमें कहते हैं—

शोभित निज अनुभूतिजुत चिदानंद भगवान।
सार पदारथ आत्मा, सकल पदारथ जान॥ 1॥

चिदानंद भगवान आत्मा स्वानुभूतिरूप ज्ञान से शोभायमान है। यह महान मंगल है। धर्मी को आत्मा की स्वानुभूति में निज स्वरूप की प्राप्ति हुई है, यह अपूर्व धर्म है, वह मोक्ष का मंगल है।

समयसार जैसा भगवान आत्मा अपनी स्वानुभूतिदशासहित शोभायमान होता है। स्वानुभूति में अपूर्व आनंद का वेदन है। स्वानुभूति से प्रकाशमान हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता अतीन्द्रियस्वभावी आत्मा है। ऐसा आत्मा ही जगत में सारभूत पदार्थ है। अंतर्मुख होने पर ऐसे आत्मा की प्रतीति होती है, वह मंगल है, वह स्वघर में अपूर्व वास्तु है।

चिदानंद प्रभु, चिदानंद भगवान... कौन? कि आत्मा स्वयं; उसका स्वभाव सिद्धभगवान जैसा शुद्ध है; ऐसे शुद्ध आत्मा को अनुभूतिगम्य करना ही जगत में सर्वोत्तम सार है। आत्मा की शोभा तो अपनी स्वानुभूति से ही है। धर्म में सर्वप्रथम क्या करना? कि अपने आत्मा की अनुभूति करना। ऐसी स्वानुभूति में आनंदसहित आत्मा प्रगट होता है—प्रकाशित होता है—शोभित होता है। इस जगत में जितने पदार्थ हें, उन सबमें श्रेष्ठ-उत्तम-सारभूत शोभावान यह चिदानंदस्वरूप आत्मा ही है। बाकी संयोग में या रागादि परभावों में कोई सार नहीं है। अपने आत्मा के स्वभाव में उन्मुख होने पर आनंद का अनुभव होता है, वह धर्म है। वही आत्मा को चार गतियों में से बाहर निकालकर सिद्धपद का स्वामी बनाता है। ऐसा धर्म, वही मंगल है।

आनंद का अनुभव कैसे हो? अपने स्वभाव के सन्मुख देखने से ही आनंद का अनुभव होता है। दूसरे पंच परमेष्ठी भगवंत आदि के सन्मुख देखने से शुभराग की उत्पत्ति होती है। पर का अनुसारण करने पर तो राग ही होता है। आत्मा को अपने स्वभाव का अनुसरण करने पर जो अनुभूति होती है, वह स्वानुभूति है, उसमें वीतरागी आनंद है। देखो, यह समयसार का अपूर्व प्रांरभ! 'शोभित निज अनुभूति जुत' आत्मा की ऐसी अनुभूति, वही परमार्थ नमस्कार है। स्वयं अपने शुद्धस्वभाव में झुकना-नमना, वह परमार्थ नमस्कार है। अनुभूति से स्वयं अपने को ही नमन किया, एक सैकण्ड जो ऐसा अनुभव करे, उसे मोक्ष की प्राप्ति होगी। स्वानुभूतिरूप दोज

उगी, उसके केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा होगी ही। अज्ञानदशा में आत्मा की शोभा नहीं थी; स्वानुभूति हुई, वहाँ चिदानंद भगवान अपनी अनुभूति-पर्याय सहित शोभित हो उठा... अनंत गुण के आत्मदरबार में चिदानंद प्रभु सुशोभित है। परभाव में आत्मा की शोभा नहीं है; अपने स्वभाव की अनुभूति में आत्मा सुशोभित होता है।

देखो, इस मांगलिक में चिदानंद भगवान की स्तुति चलती है। अपना आत्मा वही चिदानंद भगवान है; उसकी स्तुति किसप्रकार होती है ? स्वानुभूति से। स्वानुभूति होने पर भान हुआ कि अहो! ज्ञान और आनंदस्वरूप वस्तु मैं ही हूँ—ऐसी अनुभूति से आत्मा सुशोभित हो उठा।

स्वानुभूति, वह भी एक पर्याय है, और उसके फल में सकल पदार्थ जाननेरूप केवलज्ञान प्रगट होता है, वह पूर्ण शुद्धपर्याय है। इसमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आ गए।

भावाय—कहने पर द्रव्य आ गया,

चित्स्वभावाया—कहने पर गुण आ गया,

स्वानुभूति—कहने पर साधक दशा आई—अर्थात् संवर-निर्जरा आये,

(और आस्रव-बंध का उसमें अभाव आया)

सर्वभावांतरच्छिदे—कहने पर सर्वज्ञतारूप मोक्षपर्याय आई, ऐसे—विशेषणोंसहित सुशोभित जो सारभूत आत्मा, समयसार उसको नमस्कार करनेरूप मंगल किया। मंगल श्लोक में अलौकिक गंभीरभाव भरा है। प्रथम श्लोक में अलौकिक गंभीरभाव भरा है। प्रथम श्लोक में पंडित बनारसीदासजी ने चिदानंद भगवान की स्तुतिरूप मंगल किया है। अब शुद्धात्मा के प्रतिबिम्ब स्वरूप जो सिद्धभगवान उनकी स्तुति तथा नमस्काररूप मंगल दूसरे श्लोक में करते हैं—

जो अपनी दुति आप विराजत, है परधान पदारथ नामी।
चेतन अंक सदा निकलंक, महा सुख सागरकौ विसरामी॥
जीव अजीव जिते जगमैं, तिनको गुन ज्ञायक अंतरजामी।
सो सिवरूप बसै सिव थानक, ताहि विलोकि नमैं सिवगामी॥ 2॥

सिद्धपद की प्राप्ति का मांगलिक

अहो, मोक्षपुरी में विराजमान सिद्धभगवंतों को ज्ञानदृष्टि से देखकर मोक्षगामी साधकजीव नमस्कार करते हैं। अपने आत्मा में ऐसा स्वभाव है, उसे वह स्वानुभूति से देखते हैं; और अनुभूति सहित के ज्ञान से सिद्धभगवान का स्वरूप भी पहचानते हैं। पहले कहा था कि—'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो'। सिद्धभगवान अपने महान सुख-समुद्र में लीन हैं। ऐसी सिद्धभगवान की स्तुति है—परंतु उनको पहचाना किसने? जिसने अंतर में सिद्धसमान अपने निज पद को स्वानुभूति से देखा, उसने ही सिद्धभगवान को वास्तव में पहचाना। ज्ञानी ने ही सिद्धभगवान को वास्तव में पहचाना। अहो, सिद्धसमान अपने स्वरूप को अंतर में मैंने देखा है, ज्ञानकला मुझे प्रगटी है और शिवमार्ग को मैं साध रहा हूँ—ऐसी निःशंकतापूर्वक यह समयसार नाटक पंडित बनारसीदासजी ने रचा है; काव्य द्वारा अध्यात्मरस का झरना बहाया है। समयसार द्वारा शुद्धात्मा का घोलन करते-करते मोक्ष प्राप्त होता है और भववास मिटता है—ऐसा यह समयसार है, वह मोक्ष का शकुन है। अच्छा मकान मिले, वहाँ लोग कहते हैं कि विश्राम का स्थान मिला। यहाँ तो कहते हैं कि भाई! महान सुख का समुद्र ऐसा आत्मा, वही तेरे विश्राम का स्थान है, वही आनंद का धाम है। 'आनंदस्वभावी आतमराम'। सिद्धभगवान अपने आनंद की अनुभूति में लीन हैं, उन्हें स्मरण करके साधक अपने आत्मा में उतरता है। सिद्धप्रभु कहीं ऊपर से नीचे नहीं आते, परंतु स्वयं अपने अंतर में सिद्धसमान अपने आत्मा की अनुभूति की, वहाँ सिद्धपना अपने में ही दिखाई दिया। मेरे आत्मा में ही सिद्धपना भरा है; इसप्रकार स्वसन्मुख होकर सिद्धभगवान की स्थापनापूर्वक आचार्यभगवान ने समयसार का अपूर्व प्रारंभ किया है।

अहो, सिद्धदशा महान आनंदरूप... उसकी महिमा की क्या बात! उसकी भावना भाते हुए ज्ञानी कहता है कि—

सादि-अनंत अनंत समाधि, सुख में,
अनंत दर्शन-ज्ञान अनंत सहित जो...
—अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा!

ऐसा सिद्धपद अपने में देखा है और उसे हम साध रहे हैं। यहाँ आत्मा की स्वानुभूति सहित सिद्धभगवंतों को पहचानकर नमस्कार किया है। ऐसा नमस्कार ज्ञानी ही करता है। यह सिद्धपद की प्राप्ति का मांगलिक है। ●●

आत्मा की स्वतंत्र चैतन्य सत्ता

यह आत्मा चैतन्य हंस है। जैसे हंस सच्चे मोती का चारा चुगनेवाला है, वैसे ही यह चैतन्य हंस रागरूपी कंकड़ छोड़कर ज्ञान-आनंदरूपी सच्चे मोती का चारा चुगनेवाला है। सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयरूप जो सच्चे मोती हैं, उन्हें ज्ञानी हंस चुगता है—उसमें केलि करता है। जैसे हंस की चोंच में दूध और पानी को जुदा करने की शक्ति है, वैसे ही ज्ञानी-हंस भेदज्ञानरूपी चोंच से ज्ञान और राग को जुदा करके ज्ञान को ही अनुभवता है। आत्मा स्वयं अपने अतीन्द्रिय ज्ञान से स्वयं (किसी की सहायता बिना) अपने को जाने-अनुभवे-प्रकाशे ऐसा प्रकाशस्वभाव आत्मा में त्रिकाल है।

आत्मा ऐसा नहीं है कि स्वयं अपने को न जाने। स्वयं अपने को प्रत्यक्ष जाने-अनुभव ऐसा आत्मा है। इन्द्रियों से नहीं; बाह्यज्ञान से नहीं, परंतु अंतर के अतीन्द्रिय ज्ञान से आत्मा अपने को स्पष्ट जानता है और उसे जानते हुए आनंद होता है। इसलिये कहते हैं कि 'तू अपने को जान।' बाहर का सब कुछ अनंत बार जाना परंतु जाननेवाले ने स्वयं अपने को नहीं जाना, इसीलिये अज्ञान से भ्रमता रहा; उसको अब निजशक्ति का वैभव बता के संत कहते हैं कि भाई! ॐध्वनि में भगवान ने तेरा स्वरूप ऐसा बताया है कि आत्मा स्वयं अपने को साक्षात् प्रत्यक्ष जानता है। ऐसे स्वभाव के सन्मुख होकर श्रद्धा करने पर परम आनंदसहित प्रत्यक्ष संवेदन प्रगट होता है। ऐसा संवेदन, वही मोक्षमार्ग है और वही धर्म है।

जैसे शरीर का गोरा-लाल-काला इत्यादि वान (वर्ण) होता है, वैसे ही आत्मा का वान कैसा है? तो कहते हैं कि ज्ञानवान है। ज्ञान ही आत्मा का रूप है; ज्ञानवान आत्मा ज्ञान से ही अनुभव में आता है। और ऐसे ज्ञान का अनुभव किये बिना अन्य किसी शुभाशुभ कर्मकांड से आत्मा का धर्म हाथ में नहीं आता।

आत्मा स्वयं सुखस्वभाव से भरपूर चैतन्य सत्ता है; उसे न मानकर, पर में सुख मानता

है, वह अपने चैतन्य सत्तारूप जीवन का हनन करता है। अपनी सत्ता-जीना-टिकना जिस भाँति है, उसे स्वीकार न किया, उसमें अपनी भावहिंसा हुई। अपना जीवन तो ज्ञानमय-आनंदमय है, उसके बदले रागरूप और पररूप अपने को माना, इसमें ज्ञान-आनंदमय जीवन की हिंसा हुई। उसका फल संसार की चार गति का दुःख है। आत्मा स्वयं अपने चैतन्य-जीवन को पहचाने तो उसके आनंद का स्वाद आये और सुखमय जीवन प्रगटे। धर्म रोकड़िया है, जब धर्म करे, तभी अंतर में उसके नकद फलरूप आनंद का वेदन अपने को होता है और अपने को उसकी खबर भी पड़ती है।

अहो, आत्मा की चैतन्य शक्ति का विकास ऐसा अचिन्त्य है कि जिसे किसी काल या क्षेत्र की मर्यादा नहीं है; जो विकास हुआ, उसमें किंचित् भी संकोच नहीं है, वह कभी मुरझाता नहीं है। अनंत काल और अनंत क्षेत्र को एकसाथ जान ले, ऐसी शक्तिवाला चैतन्य का विकास है। ऐसी अपनी अमर्यादित शक्ति का जिसको विश्वास आया, वह अल्प विकास में या राग में कैसे रुके? राग से पार होकर अंतर के पूर्ण स्वभाव के सन्मुख हुआ, तभी ऐसी निजशक्ति की प्रतीति हुई; और प्रतीति होते ही आत्मा की शक्ति का विकास हुआ। सभी गुणों में ऐसा परिपूर्ण विकसित होने का स्वभाव है।

अनंत शक्तिसंपन्न आत्मवस्तु, वह अखंडरूप से जहाँ श्रद्धा में आयी, वहाँ उसके सर्वगुणों में निर्मल परिणमन प्रारंभ हुआ। अनंत गुणों की शुद्धि के अंश का वेदन हुआ, उसे सम्यक्त्व कहते हैं।

आत्मा में संख्या से भी अनंत शक्तियाँ हैं; काल से भी वह अनंत हैं; और भाव से भी वह प्रत्येक शक्ति अनंत सामर्थ्यवाली है; उसका क्षेत्र आत्मा जितना असंख्य प्रदेशी है। ज्ञानादि शक्ति में ऐसा अनंत सामर्थ्य है कि जिसका विकास होने पर काल या क्षेत्र की मर्यादा बिना सभी कुछ जानता है; उसके कोई मर्यादा नहीं होती, संकोच नहीं होता; ज्ञान का विकास पूर्ण ज्ञानरूप होता है, उसमें बीच में राग की आड़ नहीं होती। जैसे आनंदशक्ति का विकास अनंत आनंदरूप है; श्रद्धा अपने अनंत स्वभाव को स्वीकारने की अनंत शक्तिवाली है। ज्ञानस्वरूप आत्मा का कोई परम अद्भुत विलास है कि जिसके विलास में कोई संकोच नहीं है। एकबार विलास होने के बाद उसमें कभी संकोच नहीं होता। ऐसे अद्भुत आत्मवैभव को लक्ष में ले तो

जगत की महिमा उड़ जाये और उसमें सुखबुद्धि छूट जाये। हे जीव! तुझे ऐसे निजवैभव का दहेज देकर संत मोक्ष में ले जाते हैं। तू अपने ऐसे सत् को स्वीकार कर! तुझमें है, उसका विश्वास करके उसमें लक्ष कर। इससे तेरी शक्ति निर्मलरूप से खिल उठेगी।

शरीर का विकास जड़रूप है, राग का विकास रागरूप और दुःखरूप है; चैतन्य का विकास परम आनंदरूप और सर्वज्ञतारूप है। भगवान के सर्वज्ञता और अतीन्द्रिय आनंद प्रगट हुआ, वह कहाँ से आया? अंदर शक्ति थी, उसी का विकास हुआ। उसीप्रकार प्रत्येक आत्मा में वैसी शक्ति है और वही विकसित होकर सर्वज्ञतारूप और पूर्ण आनंदरूप खिलता है। ऐसी खिलता है कि फिर कभी मुरझाता नहीं, संकुचित नहीं होता।

अहा, चैतन्य का प्रवाह—उसके विस्तार के बीच में राग नहीं होता, चैतन्य का विस्तार चैतन्यरूप ही होता है। सुप्त चैतन्य को जागृत करने के लिये जिनवाणी माता उसके गुणगान गा रही है। अरे आत्मा! तू जाग... अपने निजगुण को देख... और आनंदित हो।

तेरा निजगुण स्वयंसिद्ध है; वह न तो अन्य के द्वारा किया जाता है और न अन्य को करता है। तेरे गुण का निर्मल कार्य स्वयं तेरे से ही होता है, अन्य कोई उसका कारण नहीं; वैसे ही तेरे गुण की निर्मल परिणति किसी दूसरे भाव को नहीं करती। तेरा कारण-कार्य तेरे में ही समाया हुआ है।

अरे जीव! तेरे चैतन्य-समुद्र आत्मा में अनंत गुणरत्न भरे हैं। उन गुणों में कहीं भी राग का प्रवेश नहीं है। तेरा शुद्धद्रव्य, अनंत शुद्धगुण, और उनकी शुद्धपर्यायों में तेरा अस्तित्व पूर्ण होता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप तेरी स्वतंत्र सत्ता है। उसमें दूसरे का कुछ भी कार्य नहीं है। स्वाधीन आत्मा अपनी अनंत शक्ति को विश्वास में लेकर परिणमन करे, वही मोक्षमार्ग है और उसमें रागादि का अभाव है।

आत्मस्वभाव को पहिचाने तो...

[बोटाद में पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

देह से भिन्न आत्मा चैतन्य प्रताप से तप्तायमान—सुशोभित प्रभु है। आत्मा की प्रभुता को कोई तोड़ नहीं सकता। अरिहंत प्रभु को और सिद्ध प्रभु को आत्मा की जो प्रभुता प्रगटी, वह कहाँ से प्रगटी? आत्मा में वैसी शक्ति थी, वह प्रगट हुई है। ऐसी ही शक्तिस्वभाववाला यह आत्मा है—उसका भान करने पर पर्याय में सम्यग्दर्शनादि प्रभुता प्रगट होती है।

ऐसे अपने आत्मा का पहले स्वसंवेदन होता है। स्वसंवेदन में रागरहित, इन्द्रियरहित आत्मा अत्यंत स्पष्ट अनुभव में आता है। आत्मा में ज्ञान-आनंद इत्यादि जो शक्तियाँ हैं, वह स्वयं अपने स्वभाव से ही हैं, किसी अन्य के कारण नहीं। अपना जैसा स्वभाव है, वैसा ही अपने स्वाद में आवे, उसका नाम धर्म है। आत्मा का जो धर्म, अर्थात् आत्मा का जो स्वभाव, उसमें पर का कुछ कार्य नहीं, उसी तरह उस स्वभाव में दूसरा कोई कारण नहीं। सम्यक्त्वादि जो पर्यायें है, वह आत्मा का कार्य हैं और आत्मा ही उनका कर्ता है; दूसरा कोई उन सम्यक्त्वादि का कारण नहीं है। अपना कारण-कार्य अपने में है, पर में नहीं। ऐसा भेदज्ञान होने पर, पर का ममत्व नहीं रहता; इसलिये अपने स्वभाव में ही अंतर्मुख होने पर निर्मल वीतरागदशा प्रगट होती है, वही मोक्ष का कारण है।

ऐसे आत्मा को जानकर उसमें एकाग्रता से हुए परमेश्वर, जबतक शरीर सहित रहते हैं, तब तक उनकी अरिहंत दशा कहलाती है और उनका शरीर ऐसा दिव्य अतिशयवाला होता है कि उसमें देखनेवाले को सात भव दिखाई पड़ते हैं और उन अरिहंत प्रभु के आत्मा की जिसे पहचान होती है, उसे तो अपने आत्मा में अनंत आत्मगुणों का वैभव दिखाई पड़ता है; उसका वर्णन इस समयसार में है। ऐसे अरिहंत परमात्मा सीमंधर भगवान वगैरह आज भी मनुष्यलोक में विदेहक्षेत्र में विराज रहे हैं। वे अरिहंत भगवान जब शरीर रहित हो जाते हैं, तब सिद्ध कहलाते हैं। ऐसा अरिहंतपना और सिद्धपना चैतन्य के पाताल में रहता है; अंदर चैतन्य का गहरा पाताल फोड़कर जो ज्ञानपरिणति प्रगटी, वह धर्म है। भाई, शरीर में या राग में कहीं धर्म

नहीं है; धर्म तो चैतन्य के पाताल में-गहराई पर है, अंतर की दृष्टि से वह प्रगट होता है। ऐसे आत्मा का श्रवण करके उसकी सन्मुखता करना, वह भी अपूर्वभाव है। आत्मा का जो सर्वज्ञ -स्वभाव, उसके सन्मुख होने पर जो तरंग उठती है, उसमें अनंत आनंद है। चैतन्य की तरंग आनंदसहित होती है; उसमें राग का अनुभव नहीं है।

ऐसे स्वरूपवाला आत्मा स्वयं अपने स्वसंवेदन ज्ञान के प्रकाश से अत्यंत स्पष्ट जानता है—दूसरे किसी की सहायता बिना स्वयं अपने को प्रकाशित करता है, आत्मा का जीवन, आत्मा की सत्ता, आत्मा की प्रभुता, आत्मा का सुख—उसका स्वीकार अपने स्वभाव की सन्मुखता से ही होता है। ऐसे आत्मा के स्वीकार में अनंत सर्वज्ञ का स्वीकार हो जाता है। सर्वज्ञ—अनंत जिनका ज्ञान है—ऐसे सर्वज्ञ भगवान इस जगत में अनंत हैं। अनंत सर्वज्ञ को स्वीकार करनेवाले ज्ञान की शक्ति कितनी ? राग में ऐसी शक्ति नहीं, और परसन्मुखी ज्ञान में भी ऐसी शक्ति नहीं कि सर्वज्ञ को स्वीकार कर सके। आत्मा के स्वभाव के सन्मुख हुए अतीन्द्रिय ज्ञान में ही ऐसी शक्ति है कि अनंत सर्वज्ञ के अस्तित्व का स्वीकार अपनी एक पर्याय में कर सके।

सर्वज्ञदेव में जैसी प्रभुता है, वैसी ही प्रभुता इस आत्मा में है। ज्ञानमात्रभाव उसका लक्षण है। जहाँ अपने आत्मा को लक्षित किया, वहाँ पर्याय में सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-अतीन्द्रिय आनंद इत्यादि का परिणमन हुआ। संसारमार्ग पलटकर मोक्ष का मार्ग शुरु हुआ। आत्मा का ऐसा भाव प्रगट हुआ, उसके सामने स्वर्ग की कोई कीमत नहीं। स्वर्ग में तो अनंत बार हो आया परंतु आत्मा के स्वरूप का निजवैभव कभी नहीं जाना। ऐसे निजवैभव की यह बात है; कि जिसको पहचानने पर परमानंदसहित मोक्षदशा प्रगट होती है।

अमर आतमराम

निज आतम को जाने बिना संसार-दुख झेले सभी।
शिव सौख्य पाने के लिए जिन-भावना भाऊँ अभी।

मार्ग और मार्ग का फल

निज परमात्मतत्त्व का सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठारूप शुद्ध रत्नत्रयात्मक मार्ग परम निरपेक्ष होने से मोक्ष का उपाय है। और उस शुद्ध रत्नत्रय का फल स्वात्म-उपलब्धि अर्थात् निज-शुद्धात्मा की प्राप्ति है, जो परम आनंदरूप है।

मोक्ष के ऐसे मार्ग का और उसके फल का सच्चा कथन निजशासन में है। पर से अत्यंत निरपेक्ष ऐसा वीतराग मोक्षमार्ग पूर्वाचार्यों ने बताया है, उस मार्ग में किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं है; दूसरे का आश्रय नहीं है। अपने शुद्ध आत्मस्वभाव की सच्ची श्रद्धा-ज्ञान-एकाग्रतारूप रत्नत्रय, वही शुद्ध रत्नत्रय है। ऐसा शुद्ध रत्नत्रय अर्थात् निश्चयरत्नत्रय, वही मोक्ष का उपाय है, इसमें पर का या राग का मिलाप रंचमात्र भी नहीं है, अकेले स्वद्रव्य के ही आश्रित हैं—इसलिये वह शुद्ध है, पर की अपेक्षा रहित है। अपने आत्मा के अलावा किसी अन्य की अपेक्षा या आश्रय मोक्षमार्ग में नहीं है; अर्थात् पर के आश्रय से जो भाव हो, वह मोक्षमार्ग नहीं है। स्वात्म-उपलब्धि अर्थात् अपने आत्मा का जैसा स्वरूप है, उसकी प्रगट प्रसिद्धि, उसकी प्राप्ति का मार्ग स्वद्रव्याश्रित ही है। ऐसा मार्ग इस परमागम में प्रसिद्ध किया है।

भाई! जिनशासन में भगवान के कहे हुए ऐसे स्वाश्रित मार्ग को तू पहचान, और इससे विपरीत पराश्रितमार्ग की श्रद्धा छोड़। सच्चे मार्ग के स्वरूप का निर्णय करके तू तुरंत ही स्वद्रव्य का आश्रय कर और परद्रव्य का आश्रय शीघ्र छोड़। स्वद्रव्य की अनुभूति तो स्वद्रव्य के ही आश्रय से होगी! यह तो स्पष्ट बात है।

परद्रव्य के आश्रय से होनेवाला जो व्यवहाररत्नत्रय है, वह वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं है। स्वद्रव्य के आश्रय से होनेवाला शुद्धरत्नत्रय ही एक मोक्षमार्ग है। अहा! मेरा आत्मा ही स्वभाव से पूर्ण सामर्थ्यवाला है—उसी के अनुभव से मोक्ष का परमानंद सधता है, फिर किसी दूसरे की अपेक्षा मुझे नहीं है। मोक्षमार्ग में परोन्मुखता है ही नहीं, स्वद्रव्य की ओर उन्मुख होने पर ही मोक्ष की साधना होती है। इसप्रकार धर्मी जानता है कि मेरे मोक्ष का कारण मेरा आत्मा ही है,

दूसरा कोई मेरे मोक्ष का कारण नहीं है। अपने आत्मा में जिसने पूर्णता देखी, वह अपने अतिरिक्त दूसरे का आसरा क्यों ले? जो दूसरे के आश्रय से मोक्ष का साधन करना चाहता है, उसने अपने पूर्ण स्वभाव को जाना ही नहीं; पूर्ण स्वभाव जाने, वह दूसरे के पास भीख नहीं माँगेगा तथा पराश्रय से मोक्षमार्ग नहीं मानेगा। राग का एक अंश भी भला माने तो रागरहित स्वभाव को उसने नहीं माना। शुद्ध आत्मा की उपलब्धि शुद्ध आत्मा के ही आधार से है। इसलिये हे जीव! ऐसे स्वाश्रित जिनमार्ग को पाकर तू अपनी बुद्धि को अपने शुद्धात्मा में जोड़; पराश्रय की बुद्धि को तोड़ और अंतर्मुख होकर शुद्ध रत्नत्रय में अपने आत्मा को लगा। भगवान का मार्ग तो निजात्मा में ही एकाग्र होने का है। पर के आश्रय से राग हो, उसे कहीं भगवान ने मोक्ष का उपाय नहीं कहा है। अंतर में रागादि से पार ऐसा जो अपना सहज परम चैतन्य तत्त्व, उसमें एकाग्र होने पर परम शांत चैतन्य वीतरागरस अनुभव में आता है और वही मोक्ष का उपाय है। सभी तीर्थंकर भगवंतों के द्वारा आचरित और उपदेशित ऐसा एक ही स्वाश्रित मोक्षमार्ग है।

आचार्य भगवान कहते हैं कि अहो, भव्यजीवो! ऐसा स्वाश्रित मोक्षमार्गरूप शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही नियम से सारभूत कर्तव्य है। मोक्ष के लिये तुम ऐसे शुद्ध रत्नत्रयमार्ग का आराधन करो, और दूसरे पराश्रित भावों को छोड़ो, ऐसे स्वाश्रित मोक्षमार्ग से विपरीत जो कोई भाव हैं, वह छोड़ने योग्य हैं। ऐसा वीतरागी मोक्षमार्ग, वही वास्तव में सारभूत है, और वही मोक्षार्थी जीव को निस्संदेह कर्तव्य है। बीच में व्यवहार और पराश्रय आ जाये परंतु वह कहीं सारभूत नहीं है, मोक्ष के लिये वह कहीं करनेयोग्य नहीं है, मोक्ष का मार्ग ते उससे निरपेक्ष है। अहो, परम वैराग्यपरिणतिरूप और सर्वथा अंतर्मुख ऐसा मोक्ष का मार्ग भगवान ने कहा है, उसी मार्ग को साधकर वीतरागमार्गी संतों ने इस परमाग में प्रसिद्ध किया है। ऐसे मार्ग का श्रवण करना भी परम सौभाग्य है, और आत्मा में इस मार्ग का निर्णय करने पर तो मोक्ष का द्वार खुल जाता है; उसका फल आत्मा के पूर्णानंद के अनुभवरूप मोक्ष है।

ऐसा मोक्ष और उसका मार्ग भगवान ने कहा है; भव्य जीव भक्तिपूर्वक उसकी आराधना करो!

(-नियमसार, गाथा 2)

कारण-कार्य की अपूर्व संधि सहित सुंदर मोक्षमार्ग

'नियम' अर्थात् अवश्य; मोक्ष के लिये जो अवश्य ही करने जैसा कार्य है, वह नियम है, अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह नियम है। उसमें भी जो सार है, वह नियम-सार है अर्थात् शुद्ध स्वाभाविक निर्विकल्प रत्नत्रय परिणति ही नियमसार है... वही निर्वाणरूप मोक्षसुख का कारण है... अर्थात् मोक्ष के लिये वह नियम से कर्तव्य है।

मोक्षार्थी जीव को मोक्ष के लिए ऐसा शुद्धरत्नत्रय प्रगट करना ही प्रयोजन है, वह किसप्रकार प्रगट हो ? कि अंतर में जो अनंतचतुष्टय स्वभावरूप शुद्ध ज्ञानचेतनास्वरूप है, वह मोक्षमार्ग का कारण है; इसलिये उसे 'कारणनियम' कहते हैं, उसके आश्रय से 'कार्यनियम' रूप मोक्षमार्ग प्रगट होता है। मोक्षमार्ग का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करने के लिए अपने ऐसे स्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी का आश्रय नहीं है, अन्य कोई कारण नहीं है। यह शुद्ध कारण अपने में त्रिकाल है, उसमें अंतर्मुख होकर उस कारण का सेवन करने पर कार्य प्रगट होता है—अर्थात् मोक्षमार्ग होता है।

शुद्ध ज्ञानचेतना (जिसमें शक्ति का अनंतचतुष्टय समा जाता है) जो त्रिकाल है, उसको चेतना-अनुभव करना, वही मोक्षमार्ग है। यह मोक्षमार्ग ही 'कार्यनियम' है, मोक्ष के लिए नियम से करनेयोग्य कार्य है, और उसके आश्रयभूत त्रिकाली शुद्धज्ञानचेतना, वह 'कारणनियम' है।

देखो, यहाँ कारण और कार्य की अलौकिक संधि है, ऐसे शुद्ध कारण और शुद्ध कार्य की संधि बतलाकर, बीच में से रागादि अशुद्ध कारण को निकालकर फेंक दिया; शुद्धरत्नत्रय का ही मोक्षमार्ग में स्वीकार करके व्यवहाररत्नत्रय भी निकाल डाला। अहो ! ऐसा सुंदर मार्ग आचार्यदेव ने इस नियमसार में प्रगट किया है। सुंदर और सूक्ष्म मार्ग है। रागादिभाव स्थूल हैं,

उनसे रहित मार्ग है, इसलिये सूक्ष्म है और आनंदरूप है, इसलिये सुंदर है। सूक्ष्म होने पर भी स्वयं को स्वानुभवगम्य होने योग्य मार्ग है। मुमुक्षुओं ने इस मार्ग का ही अनुभव करके मोक्ष प्राप्त किया है।

गाथा में आचार्यदेव ने ऐसे मोक्षमार्गरूप कार्य को नियम से कर्तव्य कहा है, ('जो नियम से कर्तव्य ऐसे रत्नत्रय वह नियम है') और उसकी टीका में उस कार्य के साथ उसका त्रिकाली कारण भी बताकर मुनिराज ने कारण-कार्य की अद्भुत संधि की है। त्रिकाली शुद्धद्रव्य, वह कारण; उसके आश्रय से प्रगटी हुई शुद्धपर्याय, वह कार्य; जिसने शुद्ध कारण का स्वीकार किया, उसके शुद्धकार्य होता ही है—अर्थात् मोक्षमार्ग प्रगट होता है; कार्य के बिना कारण का स्वीकार किया किसने? उपयोग के अत्यंत अंतर्मुख होने पर जब स्वभाव के आश्रय से मोक्षमार्गरूप कार्य प्रगट हुआ, तब धर्मी कहता है कि 'अहो! यह मेरे कार्य का कारण!' इसप्रकार कारण की अपूर्व संधि सहित धर्मी जीव मोक्ष को साधता है।

सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र यह तीनों कार्य आनंददायक हैं, इनसे आनंद सहित मोक्ष साधता है। अहो! अतीन्द्रिय सुख का साधनरूप यह श्रेष्ठ-सुंदर शुद्ध रत्नत्रय कार्य, उसका कारण भी अपने में त्रिकाल है, उसे कारणनियम कहते हैं। वह कारण तो त्रिकाल है, उसे कहीं नवीन करना नहीं हैं; परंतु उस कारण का स्वीकार करके उसके आश्रय से सम्यग्दर्शनादि कार्य प्रगट करना, वह निश्चय से करने योग्य कार्य है, उसे 'कार्यनियम' कहते हैं। यह कार्य ही मोक्ष का मार्ग है, और परम अतीन्द्रिय सुख की अनुभूति इस मार्ग का फल है। ऐसे सुंदर मार्ग और मार्गफल को जानकर अपने परम तत्त्व के सेवन से ही मैं मोक्षसुख को प्राप्त करता हूँ; बीच में व्यवहार और विकल्प आवें, उन्हें मैं मोक्षमार्ग में स्वीकार नहीं करता, उन्हें छोड़कर परमात्मतत्त्व के आश्रय से ही मैं मोक्षसुख को साधता हूँ।

अहो, मोक्ष का मार्ग ही अंतर में समाहित है... देव-गुरु की वाणी जहाँ पहुँचती नहीं, विकल्प का जहाँ प्रवेश नहीं, पर्याय का जिसमें आश्रय नहीं; अकेला अंतर्मुख स्वभाव-आश्रित निरालंबी मार्ग है। ऐसे सुंदर मार्ग की साधना संत करते हैं और जगत को दिखलाते हैं।

❀❀❀

अब मार्गरूप जो शुद्धरत्नत्रय-
उनका प्रत्येक का स्वरूप कहते हैं:

मोक्षमार्ग में जो सम्यग्ज्ञान है—वह कैसा है ?

जिसमें परद्रव्य का जरा भी अवलंबन नहीं, समग्र ही उपयोग सर्वथा अंतर्मुख होकर अपने परम तत्त्व का परिणमन करता है और अंतर में उसे उपादेय करता है—ऐसा ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान है और वही मोक्ष का साधन है। जो ज्ञानोपयोग अत्यंत अंतर्मुख होकर अपने शुद्ध ज्ञायक तत्त्व की उपासना करता है, वह ज्ञान ही मोक्ष का कारण है, वही नियम से कर्तव्य है। बहिर्मुख कोई भी विकल्प मोक्ष के लिए कर्तव्य नहीं हैं। इसलिए कहते हैं कि हे मोक्षार्थी जीवो! तुम उपयोग को अंतर में लगाकर स्वद्रव्य को शीघ्र ही ग्रहण करो और परद्रव्य को शीघ्र ही छोड़ो।

वाह! परमतत्त्व का परिज्ञान अंतर्मुख उपयोग से होता है। इन्द्रियज्ञानरूप पर-सन्मुख उपयोग से परम तत्त्व का सम्यग्ज्ञान नहीं होता। उपयोग को अंतर्मुख करके स्वद्रव्य का अलंबन लिया, उसमें परद्रव्य का किंचित् अवलंबन नहीं है, ऐसे उपयोग से आत्मा का सम्यग्ज्ञान होता है—ऐसा अंतर्मुखी मोक्षमार्ग है।

उपयोग बहिर्मुख होकर पर का जो ज्ञान होता है, वह भी अपने से ही होता है; वह कहीं पर से नहीं हुआ है, किंतु वह परावलंबी ज्ञान होने के कारण मोक्ष को नहीं साध सकता। मोक्ष को साधनेवाला ज्ञान परद्रव्य के अवलंबन से रहित है। देव-गुरु-शास्त्र या रागादि—इन सबसे पार अकेले शुद्धस्वरूप का ही अवलंबन करनेवाला उपयोग मोक्ष को साधता है। संपूर्णरूप से अंतर्मुख उपयोग ही मोक्ष का कारण होता है। अंतर्मुख उपयोग भी मोक्ष का कारण हो और किंचित् बहिर्मुख उपयोग भी मोक्ष का कारण हो-ऐसा नहीं है; उपयोग में थोड़ा आत्मा का अवलंबन और थोड़ा देव-गुरु-शास्त्र का अवलंबन—ऐसे दो अवलंबन नहीं हैं; अकेले स्वद्रव्य का ही अवलंबन है। बाहर का अवलंबन जरा भी उसमें नहीं है, अर्थात् बहिर्मुख कोई

भी भाव (शुभ या अशुभ) वह आत्मा को मोक्ष का साधन नहीं है। आत्मालंबी वीतरागभाव अकेला ही मोक्ष का साधन है।

देखो तो सही, पर से अत्यंत निरपेक्ष अंतर्मुखी मोक्षमार्ग वीतराग संतों ने जगत में भव्य जीवों के मोक्ष के लिए प्रसिद्ध किया है। ऐसे अंतर के अतीन्द्रिय मार्ग का निर्णय करके अंदर स्वद्रव्य के आलंबन का बार-बार प्रयोग करना चाहिये।

मोक्ष के हेतुरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों में अखंड स्वद्रव्य ही आलंबन है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र, ऐसे गुणभेद का आलंबन नहीं है! परम तत्त्व कहो, शुद्ध जीवास्तिकाय कहो या कारणपरमात्मा कहो,—ऐसा जो अपना ज्ञायकस्वभाव, उसके ही अंतर्मुख अवलंबन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग प्रगट होता है। उसमें सम्यग्ज्ञान का अंतर्मुखपना बताया, अब सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझाते हैं।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन है—वह कैसा है?

प्रथम तो सम्यग्दर्शन पानेवाला जीव कैसा है? कि भगवान परमात्म-सुख का अभिलाषी है; अपने आत्मसुख के सिवा जगत में दूसरे किसी की अभिलाषा नहीं है; ऐसे जीव के शुद्ध अंतर तत्त्व के आनंद का जन्मधाम ऐसा अपना शुद्ध जीवास्तिकाय द्रव्य—उसके अवलंबन से जो श्रद्धा होती है, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यक् श्रद्धा में अपने शुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का अवलंबन नहीं है। अंदर में भी 'इस पर्याय से इस द्रव्य को पकडूँ' ऐसा भेद नहीं है। स्वद्रव्य का अवलंबन हुआ, वहाँ शुद्धपर्याय वर्तती ही है।

अहा, मेरे आनंद के विलास का धाम तो मेरा आत्मा है; मेरे आत्मा में ही अतीन्द्रिय आनंद का उद्भव होता है, अत: आनंद का जन्मधाम मेरा आत्मा ही है। इसप्रकार अंतर्दृष्टि से प्रतीति करना ही सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन के साथ ही आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद का जन्म होता है; सम्यग्दर्शन होते ही आनंद का जन्म हुआ... आत्मा में से आनंदपुत्र का अवतार हुआ। अपने लिए जगत में धर्मी जीव को दूसरे किसी की अपेक्षा नहीं है। जिसप्रकार समुद्र स्वयं अपने में डोलता है, उसीप्रकार धर्मी स्वयं अपने आनंद-समुद्र में आनंद का अनुभव करता है। कस्तूरी मृग की तरह अज्ञानी बाहर में अपना आनंद खोजता है, धर्मी तो जानता है कि मेरा असंख्यप्रदेशी आत्मा ही मेरे आनंद की उत्पत्ति का स्थान है, मेरे आत्मा में ही आनंद भरा

है।—इसप्रकार अत्यंत अंतर्मुख होकर अपने शुद्धस्वभाव की निर्विकल्प प्रतीति, वही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन आनंद की अनुभूतिसहित प्रकट होता है, इसलिये उसके साथ आनंद के जन्म की बात ली है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आनंदरूप हैं। सम्यग्दृष्टि ने अपना सुख अपने में अनुभव कर लिया है, अपना सर्वस्व अपने में देख लिया है—'शुद्धबुद्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति सुखधाम'—इस तरह स्वाश्रित सुंदर मोक्षमार्ग के सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन की बात की, अब सम्यक्चारित्र की बात करते हैं।

मोक्ष के कारणरूप सुंदर चारित्र है—वह कैसा है?

'सुंदर' अर्थात् वीतराग; सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र, यह तीनों वीतराग हैं, और वीतराग हैं; इसलिये सुंदर हैं। निश्चय ज्ञान-दर्शनस्वरूप जो कारणपरमात्मा है, उसकी श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक उसमें अविचल स्थिति, वही चारित्र है। उसमें राग नहीं है; ऐसा चारित्र मोक्ष के लिए कर्तव्य है। स्वरूप में लीनतारूप वीतरागचारित्र को नियम कहा परंतु शुभराग-पंचमहाव्रतादि विकल्पों को नियम नहीं कहा; अर्थात् मोक्ष के लिए वीतरागचारित्र को ही कारण कहा, शुभ को कारण नहीं कहा। रत्नत्रयरूप जो ऐसा सुंदर मार्ग है, वह परम निरपेक्ष है और राग के अभाव से वह शुद्ध है; ऐसे शुद्ध रत्नत्रय को नियम-सार कहते हैं, और वह नियम से कर्तव्य है।

रागरहित शुद्धरत्नत्रय, वही सुंदर है और वही उत्तम है। रागरूप व्यवहाररत्नत्रय कहीं सार नहीं है-श्रेष्ठ नहीं है, कर्तव्य नहीं है; इसलिये रत्नत्रय के साथ 'सार' विशेषण लगाकर उन सभी विपरीत भावों का परिहार किया है। विपरीत भाव से रहित अर्थात् रागरहित ऐसा जो शुद्ध सारभूत-निर्विकल्प-वीतरागी रत्नत्रय, वही मोक्ष का साक्षात् कारण होने से मुमुक्षु का कर्तव्य है, उसी से अतीन्द्रिय मोक्षसुख प्राप्त होता है।

अहो, मोक्ष का कारण तो शुद्ध रत्नत्रय है, और वह रत्नत्रय अंतर्मुख आत्मा के ही आश्रय से होता है। जिसमें किसी दूसरे का अवलंबन नहीं है, ऐसे उपयोग को अत्यंत अंतर्मुख करके अपने परम तत्त्व को जाना, परम-आत्मसुख का ही अभिलाषी होकर अंतर में आनंद का धाम ऐसे अपने शुद्धजीव की परम श्रद्धा की, और उसी कारणपरमात्मा में स्थिरता की—ऐसे शुद्ध रत्नत्रय में कहीं भी राग नहीं आया, परद्रव्य का अवलंबन भी नहीं आया, अकेले स्व-

द्रव्य के ही अवलंबन से ऐसा शुद्धरत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग है, और वही भव के नाश के लिये भव्य जीवों को करनेयोग्य है। इसलिये मुनिराज कहते हैं कि—

इसप्रकार विपरीतता रहित निर्विकल्प सर्वश्रेष्ठ और सुंदर ऐसे शुद्ध रत्नत्रय को प्रगट करके मोक्ष के परम अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता हूँ... तुम भी ऐसा अनुभव करो।

वाह! कैसा सुंदर मार्ग! और कैसा उत्तम उसका फल! ऐसे शुद्ध मार्ग और उसके उत्तम फल का स्वरूप वीतरागी संतों ने भव्यजीवों के परमानंद के लिए प्रगट किया है।

[नमस्कार हो उन संतों को और उस सुंदर मार्ग को!]

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

सुख से भरपूर चैतन्यलक्ष्मी को लक्ष में ले

संसार के वैभव की अपेक्षा आत्मा का वैभव भिन्न जाति का है। अरे, संसार में लक्ष्मी के लिए जीव कितना दगा-प्रपंच और राग-द्वेष करता है! उसमें जीवन गँवाता है और पाप बाँधता है। भाई, तेरे स्वघर की चैतन्यलक्ष्मी महान है, उसकी सँभाल कर न! उसमें कुछ दगा-प्रपंच नहीं है, राग-द्वेष नहीं है, किसी की अपेक्षा नहीं है, तो भी वह महा आनंदरूप है। बाहर की लक्ष्मी मिले तो भी उसमें से सुख मिलता नहीं। यह चैतन्यलक्ष्मी स्वयं आनंदरूप है। ऐसा अपार वैभव अपने ही आत्मा में भरा है—इसे लक्ष में लेते ही सुख का अनुभव होता है।

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

ज्ञान का समुद्र उमड़कर सम्यक्रत्न प्रदान करता है

आत्मा की साधनामय जिनका जीवन है और जो सदा हमें आत्म-साधना की प्रेरणा दे रहे हैं—ऐसे पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का ८२वाँ मंगल-जन्मोत्सव पिछले दिनों वैशाख शुक्ला दूज को पोरबंदर में समुद्र किनारे हजारों भक्तों ने आनंद सहित मनाया.... पूज्य स्वामीजी की मंगल छाया में ऐसी शीतलता का अनुभव होता है, मानो हम परम गंभीर चैतन्य समुद्र के किनारे ही बैठे हों! ठेठ किनारे तक लाकर पूज्य गुरुदेव हमसे कहते हैं कि—देखो भाई! यह चैतन्य-समुद्र तुम्हारे सामने ही उमड़ रहा है—अब तुम इसमें मग्न होओ... इसकी गहराई का माप तुम स्वयं अंदर उतरकर लो—

प्रातः—मध्याह्न एक-एक घंटे तक शांतरस से भरपूर चैतन्य-सागर की शीतल लहरों का स्पर्श करने के पश्चात् पूर्ण चैतन्यसमुद्र में स्नान करने को जी चाहता है, फिर किनारे की रेत में चैन नहीं पड़ता। अहा! गुरुदेव! आप स्वयं तो सागर समान गंभीर हो ही... और जो तत्त्व आप बतला रहे हैं, वह भी समुद्र जैसा अगाध-गंभीर है। जिसप्रकार समुद्र स्वयं उल्लसित होकर मैल को बाहर फेंक देता है, उसीप्रकार इस चैतन्यसमुद्र में परभावों रूपी मैल प्रवेश नहीं कर सकता। आनंद से उल्लसित चैतन्य समुद्र परभावों के मैल को बाहर निकाल फेंकता है। आनंद के ऐसे निर्मल सागर को आत्मा में ही समा देनेवाले और उस समुद्र का मंथन कर-करके सम्यक्त्वादि अनंत रत्नों को प्राप्त करानेवाले हे गुरुदेव! आपने समुद्र से भी महान ऐसे चैतन्यदेव के दर्शन कराये हैं... आपके अवतार से इस भरतक्षेत्र के जीवों को अपने में ही परमात्मा की प्राप्ति हुई है। आज हम आपका कल्याणकारी जन्मोत्सव मनाते हुए अपने को परम सौभाग्यशाली मानते हैं... हमारे हर्षोल्लास की सीमा नहीं है... आपके मंगल आशीर्वाद से हम वीतरागमार्ग में सदा आपके साथ रहेंगे... हम आपका बारंबार अभिनंदन करते हैं।

—सम्पादक

विविध समाचार

पूज्य श्री कानजी स्वामी का मंगल विहार एवं जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना

पूज्य श्री कानजीस्वामी तारीख 29 अप्रैल से 13 मई तक राजकोट में विराजमान रहे और अपनी अध्यात्मरस झरती वाणी से श्रोताओं को तृप्त किया। तत्पश्चात् स्वामीजी तारीख 14 को प्रात:काल एक दिन के लिये सुरेन्द्रनगर पधारे, जहाँ आपका उल्लासपूर्ण भव्य स्वागत हुआ। सुरेन्द्रनगर में दोपहर का प्रवचन एवं जिनमंदिर में जिनेन्द्रभक्ति का कार्यक्रम सानंद संपन्न हुआ।

तारीख 15 के प्रात:काल पूज्य स्वामीजी अहमदाबाद पधारे और उसी दिन दोपहर को 1 बजे वायुयान द्वारा जयपुर पधारे। जहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन (श्री पूरणचन्द्रजी गोदीका) द्वारा विद्यार्थियों के लिये 20 दिन के जैनधर्म शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया है। बाहर से हजारों की संख्या में मुमुक्षु पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का एवं शिक्षण शिविर का लाभ लेने हेतु आये हैं। पूज्य स्वामीजी तारीख 4 जून तक जयपुर विराजेंगे। तारीख 5 जून को जयपुर से प्रस्थान करके अहमदाबाद होते हुए तारीख 6जून को प्रात:काल भावनगर पधारेंगे और तारीख 9-6-71 तक विराजेंगे। तारीख 10-6-71 के प्रात:काल स्वामीजी का सोनगढ़ में आगमन होगा। इसप्रकार वर्तमान में पूज्य स्वामीजी द्वारा जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना हो रही है।

मध्यप्रदेशीय मुमुक्षु मंडल के समाचार

मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में माह अप्रैल 71 में वीतरागमार्ग की प्रभावना का काफी प्रचार हुआ है; जिसमें से कुछ विशेष समाचार मुमुक्षुओं की प्रेरणा हेतु दे रहे हैं:—

भोपाल—महावीर जयंती के अवसर पर श्री पंडित कैलाशचंदजी बनारस तथा श्री जगन्मोहनलालजी शास्त्री कटनी ने पधारकर जयंती की सफलता में सहयोग देकर तत्त्वअभ्यास की विशेष प्रेरणा दी, तथा विनयकुमारजी पथिक मथुरा ने सुंदर वैराग्यता का संदेश सुनाया।

विदिशा (म.प्र.)—महावीर जयंती के अवसर पर श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांत शास्त्री तथा श्री जिनेन्द्रकुमारजी देहली के पधारने से काफी प्रभावना हुई, इसके पश्चात् दिनांक 26-4-71 को पूज्य स्वामीजी की 82वीं जन्म-जयंती का महोत्सव मनाया गया तथा दो ब्यासी रकमों के साथ-साथ 82 आत्मधर्म के ग्राहक बनाकर सूचना भेजी गई।

मौ (म.प्र.)—श्री पंडित ब्रह्मचारी हेमराजजी ने दिनांक 6से 17 तक काफी समय देकर तत्त्व अभ्यास की प्रेरणा देते हुये अपूर्व प्रभावना की।

इटावा (उ.प्र.)—समाज के विशेष आग्रह से श्री पंडित ज्ञानचंद विदिशावालों के द्वारा दिनांक 8से 10-4-71 तक महावीर-जयंती के अवसर पर अनेक स्थानों के मुमुक्षुओं ने बड़ी भारी संख्या में लाभ लिया व पूज्य स्वामीजी का काफी उपकार माना।

अशोकनगर (म.प्र.)—समाज के विशेष आग्रह पर श्रीयुत पंडित धन्नालालजी ग्वालियरवालों ने दिनांक 13 से 17-4-71 तक ठहरकर धर्म की अच्छी प्रकार प्रभावना करके मुमुक्षुओं को आत्मलाभ पहुँचाया। दिनांक 27 को श्री पंडित ज्ञानचंद विदिशावालों का एक प्रवचन समाज की अपार भीड़ के बीच में हुआ, जिससे अधिक प्रभावना हुई।

ग्वालियर (म.प्र.)—ग्वालियर नगर में मुमुक्षुओं की काफी रुचि जागृत हो चुकी है। इस माह में श्री पंडित राजमलजी भोपाल, श्री जवाहरलालजी विदिशा, श्री पंडित धन्नालालजी आदि अनेक विद्वानों के द्वारा काफी धर्म-प्रभावना हुई।

गुना (म.प्र.)—समाज के विशेष आग्रह से श्री कनुभाई दाहोद तथा श्री रूपवती किरण जबलपुर ने महावीर-जयंती के उपलक्ष में पधारकर धर्म की विशेष प्रभावना का; श्री कनुभाई ने अपना 6दिन का अमूल्य समय देकर लोगों को काफी आत्मलाभ पहुँचाया। इसके पश्चात् दिनांक 25-4-71 को श्री पंडित ज्ञानचंद जैन विदिशावालों के 3 प्रवचन हुए, जिसमें भारी संख्या में उपस्थित होकर मुमुक्षुओं ने आत्मलाभ प्राप्त किया। दिनांक 26-4-71 को पूज्य स्वामीजी की जन्म-जयंती का प्रोग्राम भी 'सन्मति-सन्देश' के संचालक श्री प्रकाशचंदजी हितैषी दिल्ली वालों की अध्यक्षता में बड़ा सफल हुआ।

राघौगढ़ (म.प्र.)—समाज के विशेष आग्रह से सिर्फ पूज्य स्वामीजी की जन्म-

जयंती को विशेष रूप से सफल बनाने के लिये विदिशा से श्री ज्ञानचंद जैन ने पधारकर वास्तविक रूप से तत्त्व का रहस्य समझाया; बालकों के द्वारा भावभीने प्रदर्शन किये गये, मुमुक्षुओं ने स्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की।

रांझी (जबलपुर)—वैशाख शुक्ला दूज को परमोपकारी आत्मज्ञ संत श्री कानजीस्वामी का जन्मदिवस अत्यंत उल्लासपूर्ण वातावरण में श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों की अध्यक्षता में मनाया गया। वीतराग विज्ञान पाठशाला के छात्रों ने पूज्य स्वामीजी के जीवन पर एक संवाद प्रदर्शित किया जिसका शीर्षक था—'दूज का चाँद'। पंडित रतनचंद्रजी भारिल्ल, श्री प्रेमचंदजी आदि ने भी पूज्य स्वामीजी के उपकार स्मरण करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की। पाठशाला का परीक्षाफल घोषित किया गया। श्री अभयकुमारजी ने सुंदर शैली में भाववाही काव्य द्वारा स्वामीजी का गुणानुवाद किया।

बालागढ़ (शिवपुरी-म.प्र.)—तारीख 4-5-71 को श्री पंडित गोविंदरामजी खड़ेरीवाले हमारे विशेष आमंत्रण पर 8दिन के लिये पधारे। प्रतिदिन चार बार प्रवचन, पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों का टेप रिकार्डिंग तथा शंका-समाधान आदि। इसप्रकार नियमित करीब 9 घंटे का कार्यक्रम रहता था। तत्त्व संबंधी हमारी अनेक भूलें थी जो मिट गईं। हम पूज्य स्वामीजी के तथा सोनगढ़ की संस्था के आभारी हैं। तारीख 2-5-71 को यहाँ मुमुक्षु-मंडल की स्थापना पंडितजी ने करायी है। *—रमेशचंद्र जैन, मंत्री*

टड़ा (सागर)—खड़ेरी निवासी पंडित गोविंददासजी को समाज ने आमंत्रण देकर बुलाया। उनके प्रवचनों से समाज में अच्छी धर्मजागृति आयी। टड़ा में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल की स्थापना हुई। *— धर्मचंद जैन शास्त्री*

इस माह वीर-जयंती तथा पूज्य स्वामीजी की जन्म-जयंती के विशेष प्रोग्राम होने से लोगों ने आत्मलाभ प्राप्त किया, जिसके लिये, हम पूज्य स्वामीजी के आभारी हैं। इस माह अनेक विद्वान जयपुर पहुँच रहे हैं; मैं भी जयपुर जा रहा हूँ, इसकारण यदि कोई मुमुक्षु भाई विशेष समाचार दें तो कृपया श्री डालचंदजी सर्राफ भोपाल के पते पर दें तथा दिनांक 2 जून 71 को म.प्र. मुमुक्षु मंडल की मीटिंग जयपुर में रखी गई है। अत: वहाँ सभी सम्मिलित हों, विशेष समाचार वहाँ दिये जावेंगे। *—ज्ञानचंद जैन*

बड़ामलहरा में सिद्धचक्र मंडल विधान सानंद संपन्न

श्रीमान् पंडित पन्नालालजी फौजदार द्वारा नवनिर्मित श्री महावीर दिगम्बर जैन मंदिर फौजदार पथ के प्रांगण में आयोजित श्री सिद्धचक्र मंडल विधान दिनांक 27-3-71 से 31-3-71 तक सानंद संपन्न हुआ। यह समस्त विधि विधान श्रीमान् पंडित पन्नालालजी फौजदार द्वारा संपन्न हुआ।

इस अवसर पर श्रीमान् पंडित गोविंददासजी खड़ेरी एवं मुमुक्षु मंडल खड़ेरी के अनेक सदस्यों ने इस कार्य में भाग लिया।

पंडित गोविंददासजी के पधारने से धर्म की अच्छी जागृति हुई। प्रतिदिन तीन बार प्रवचन होता था। जिसमें मोक्षमार्गप्रकाशक एवं समयसार मुख्य थे। इन्होंने निश्चय एवं व्यवहारनय पर बहुत ही मार्मिकता पूर्ण विवेचन किया, साथ ही पूज्य श्री स्वामीजी के समयसार गाथा 71-72 पर प्रवचन टेपरिकार्डिंग द्वारा सुनकर जैन एवं जैनेतर समाज का विशाल समूह गद्‌गद् हो जाता था। यहाँ धर्म की बहुत अच्छी प्रभावना हुई।

डॉ. शीतल प्र० फौजदार, बड़ामलहरा, जिला-छतरपुर (म.प्र.)

आत्मधर्म के ग्राहकों से निवेदन

इस अंक के साथ आत्मधर्म 27वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। जिन ग्राहकों ने वार्षिक चंदा न भेजा हो, वे जल्दी भिजवा देवें। आत्मधर्म प्रति मास की 15वीं तारीख को पोस्ट किया जाता है, जो आपको तारीख 18-19 तक मिल ही जाना चाहिये; किंतु इस बार प्रेस की गड़बड़ी के कारण विलंब से भेजा जा रहा है। ग्राहकों से निवेदन है कि आपना पता विस्तार सहित स्पष्ट लिखें। इस अंक के रैपर पर लिखा हुआ पता देख लें और यदि कोई भूल हो तो हमें सही पता लिखकर भिजवा दें, ताकि आपको आत्मधर्म समय पर मिलता रहे।

— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सूचना

पूज्य श्री कानजीस्वामी आजकल जयपुर में विराजमान हैं और तारीख 4 जून तक रहेंगे। वहाँ श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट ने अपना पुस्तक-विक्रय विभाग खोला है। इसलिये हमें पिछले दिनों जो आर्डर प्राप्त हुए हैं, उनकी पुस्तकें हम जुलाई मास के प्रथम सप्ताह में भेज सकेंगे। कृपया, नोट कर लें। *— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)*

राजकोट शहर के भावभीने प्रवचनों में

पूज्य स्वामीजी कहते हैं कि—

ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा में अनंत शक्ति है; उसके सन्मुख होने से अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है। ऐसी दशा प्रगट हो उसका नाम धर्म है।

❁

आत्मा की शक्ति का कार्य निर्मल है; वह राग से पार है। निर्मल गुण-पर्यायों का पिण्ड आत्मा है; उसमें अंतर्दृष्टि करने से संपूर्ण आत्मा निर्विकल्प अनुभव में आता है।

❁

भगवान! ऐसा तेरा सहज तत्त्व, उसे तू लक्ष में तो ले। अरे, महाभाग्य से ऐसे परम सत्य-स्वभाव की बात सुनने को मिलती है... और जो उसे समझे उसकी तो बात ही क्या!

❁

शुद्ध दृष्टिवान आसन्न-भव्य जीव को अपने अंतर में शुद्ध कारणपरमात्मा ही उपादेय है; उसमें सहज सुख का सागर उछलता है। ऐसे उत्तम सारभूत स्वतत्त्व में अपनी बुद्धि को लगाओ!

❁

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं
अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	" " " भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	शास्त्र का अर्थ समझने की पद्धति	०.१०
१७	श्रावक धर्मप्रकाश	२.००
१८	अष्ट-प्रवचन (भाग-१)	१.५०
१९	अष्ट-प्रवचन (भाग-२)	१.५०
२०	मोक्षमार्गप्रकाशक	२.५०
२१	पं. टोडरमलजी स्मारिका विशेषांक	१.००
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२४	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२६	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
२७	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-३	०.६५
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	३.२५
२८	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२९	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
३०	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र)	६.००
३१	मोक्षमार्गप्रकाशक ७वाँ अध्याय	०.५०
३२	जैन बालपोथी भाग-२	०.४०
३३	अष्टपाहुड़ (कुन्दकुन्दाचार्यकृत) पं. जयचंदजीकृत भाषावचनिका	प्रेस में
३४	तत्त्वनिर्णय	०.२०
३५	शब्द-कोष	०.२०
३६	हितपद संग्रह (भाग-२)	०.७५

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)